वैदिक वाङ्मय में संगीत – एक वर्णनात्मक अध्ययन

डॉ० अनुभा गुप्ता
कत्थक नृत्यकार

''आदि नाद अनहद भयो, तासे उपज्यो वेद
मुनि पायो या वेद से, सकल सृष्टि को भेद।।''[1]

संगीत अनादिकाल से वेदों के समान प्रतिष्ठित है। सृष्टि की रचना से पूर्व ही ईश्वर ने सदैव संगीत को स्वयं के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया। शिवजी ने डमरू का वादन किया, माँ सरस्वती ने वीणा का वादन किया तदोपरान्त श्री कृष्ण ने बांसुरी के माध्यम से मंत्र मुग्ध किया, शिव का ताण्डव पार्वती जी से लास्य अंग नृत्य का आधार बना, यह कहना अतिश्योक्ति न होगी कि हमारा समस्त ब्रह्माण्ड संगीतमय सौन्दर्य से परिपूर्ण है।

संगीत की दो धारायें सदैव समानान्तर चलती रही है। वैदिक संगीत जो अनादि, अपौरुषेय, अत्यन्त पवित्र, नियमबद्ध, व्यवस्थित और अपरिवर्तनीय था। वेदों का सस्वर–पाठ उसका रूप था। यह सस्वर पाठ 'सामगान' कहलाता था।

दूसरी धारा वह थी जो समयानुरूप मनुष्य द्वारा निर्मित थी जिसके नियमों में शिथिलता थी, जो लोक रूचि के अनुकूल और परिवर्तनशील था, वह लौकिक संगीत था।

संगीत शब्द की व्युत्पत्ति गीत, धातु में 'सम' उपसर्ग लगाकर हुई है, 'सम' यानि सहित गीत यानी 'गान'। वामन शिवराम आप्टे संस्कृत हिन्दी कोष के अनुसार संगीत शब्द की उत्पत्ति – सम + गै + क्त धातु के संयोग द्वारा मानी गई है।[2] मानक हिन्दी कोष में भी इसी प्रकार संगीत शब्द की उत्पत्ति बताई गई है– सं+सम्, गै+गान+क्त धातुओं के संयोग द्वारा स्वीकार की गई है।[3] इसी प्रकार 'वराहोपनिषद' में उल्लेखित है – संगीत ताल लय वाद्य वंशपियौ लिस्य कुम्भ परिक्षर्धन ढीव व्युत्पत्ति की दृष्टि से सम्यक गीतम् (सम) का बोधक होने पर प्रचार के अर्न्तगत संगीत–गीत, वाद्य तथा नृत्य के अभिन्न साहचर्य का ज्ञापक रहा है।[4] यदि संगीत की उत्पत्ति के बारे में कहा जाये तो बहुत सारे मत सामने आते हैं। परन्तु हमारे हिन्दु व आध्यात्मिक मान्यता के अनुसार संगीत का जन्म ब्रह्मा जी से माना जाता है। बहुत से मुनीजनों ने इसके साक्ष्य स्वरूप अपने ग्रन्थों में लिखा भी है–

''द्रुहिणेत यदन्विष्टं प्रयुक्त भरते न च।
महादेवस्य पुरतस्तन्मार्गारेण्य विमुत्तादम्।।''
''संगीत दर्पण लेखक दोमेदर पंडित, 1625''

दामोदर पं० के मतानुसार संगीत की उत्पत्ति आरम्भ में वेदों के निर्माता ब्रह्माजी द्वारा हुई इनसे यह कला शिव को और शिवजी के द्वारा देवी सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वती जी से संगीत कला का ज्ञान नारद जी को प्राप्त हुआ। नारद ने स्वर्ग के गंधर्व, किन्नर तथा अप्सराओं को संगीत शिक्षा दी। वहां से ही भरत, नारद और हनुमान आदि ऋषि संगीत कला में पारंगत होकर भू–लोक पर संगीत कला के प्रचारार्थ अवतीर्ण हुए।[5]

भारतीय संगीत के इतिहास को निम्नांकित चार भागों में विभक्त किया जा सकता है:–

1. अति प्राचीन काल (वैदिक काल) – 2000 ईसा पूर्व से 1000 ईसा–पूर्व तक।
2. प्राचीन काल – 1000 ईसा पूर्व से 800 ईसा–पूर्व तक।
3. मध्यकाल (मुस्लिम काल) – 800 ई० से 1800 ई० तक।
4. आधुनिक काल – 1900 ई० से वर्तमान काल तक।

भारतीय संगीत की उत्पत्ति ईश्वर से व इसका लिखित प्रमाण वेदों में प्राप्त होता है। कहने का तात्पर्य है कि भारत के प्राचीनतम संगीत का विवरण हमें वैदिक काल में मिलता है। वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक एवं संगीतिक इतिहास का प्राचीनतम युग रहा है। वैदिक काल में संगीत का विकसित सुव्यवस्थित रूप हमें वेदों के माध्यम से परिलक्षित होता है। वेद मन्त्रों के संग्रह को संहित कहा जाता है ये संहिताए चार है:–

1. ऋक, 2. यजुः 3. साम 4. अथर्व

ऋग्वेद में संगीत – ऋग्वेद वैदिक संगीत का प्राचीनम स्रोत होने के साथ ही अन्य वैदों का मूल भी है। इसमें सबसे प्रथम संगीत विषयक सामग्री हमें प्राप्त होती है। ऋग्वेद में गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों का पर्याप्त प्रचलन दृष्टिगोचर होता है।

ऋग्वेद में गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायत्र, गीति अथवा साम शब्दों का प्रयोग पाया जाता है। ऋग्वेद की ऋचाओं का प्रयोग दो प्रकार से किया जाता थाः–

1. **शस्त्र**–शस्त्र नामक मन्त्रों का वैशिष्ठय उनके पठन में है तथा 'होता' के द्वारा इन मंत्रों का पठन किया जाता था। इन मंत्रों का पठन देवताओं के आवाहन के लिए व यज्ञ में आहुति देने के अवसर पर किया जाता था।

2. **स्तोत्र** – ऋग्वेद की ऋचाएं स्वरावलियों में निबद्ध होने पर स्तोत्र कहलाती है, यानि स्तोत्र मंत्रों की विशेषता उनके गान में है। ऐसे स्तोत्रों का आवृत्तिपूर्वक गान स्तोम कहलाता है। आधुनिक संगीत में जिस प्रकार रंजकता हेतु गीत या पद की पंक्ति विभिन्न स्वरों में कई बार गाई जाती है। उसी प्रकार वैदिक संगीत में भी स्तोत्रों के आवृत्ति पूर्वक गान को – 'स्तोम' की संज्ञा दी गई है।[6]

गीत प्रबन्धों को वैदिक काल में गीति, गाथा, गायत्र व साम नामों से सम्बोधित करते थे। 'गाथा' एक विशिष्ट तथा परम्परागत गीत प्रकार था जिसका गायन धार्मिक तथा लौकिक समारोहों पर किया जाता था। 'अश्वमेद्य यज्ञ' में ऐसी गाथाओं का गान ब्राह्मण तथा क्षत्रिय गायकों के द्वारा किए जाने का उल्लेख है। इन गाथाओं के गायक गाथिन कहलाते थे। यज्ञ के अन्तर्गत सामगान के गौरवपूर्ण स्थान का संकेत ऋग्वेद के मन्त्रों में मिलता है। सामगान उन्हीं विद्वानों को प्राप्त हो सकता था जो जागरणशील थे। ऋग्वेद के एक मन्त्र के अनुसार साम के गायन से नभोमंडल प्रतिध्वनित हो उठता था। एक मन्त्र में पक्षियों के कूजन की उपमा उद्गाता के सामगान से की गई है। ऋग्वेद काल में सामगान कुछ विशिष्ट छन्दो के साथ किया जाता था और उन्हीं छन्दों के नाम से साम प्रसिद्ध हो जाते थे। जैसे ब्रह्मसाम के अविष्कर्ता भारद्वाज ऋषि है। इन सामों का गायन यज्ञादि, धार्मिक कार्यों, लौकिक प्रसंगों पर किया जाता था। ऋग्वेद के यमसूक्त में अन्त्येष्टि के समय किया गया सामगान मृत व्यक्ति को यमधाम तक सुगमता से पहुँचा सकता था।

ऋग्ववैदिक कालीन स्वर

ऋग्वेद में उदात्त (ऊँचा) अनुदात्त (नीचा) स्वरित दोनों का (समाहार) इन तीन प्रकार के स्वरों का उल्लेख भी है जिसमें संगीत सम्बन्धी तारता ;च्यजबीद्ध का ज्ञान प्राप्त होता है।[7]

ऋग्वैदिक कालीन वाद्य व नृत्य

ऋग्वेद काल में गायन के साथ–साथ वादन व नृत्य का भी उल्लेख है।

अवनध वाद्य – इनमें दुन्दुभि, गर्गर गोधा

तत्व वाद्यों में – वाण (यानि वीणा) कर्करी

सुषिर वाद्यों में – बाकुर, नाड़ी (वेणु या बांसुरी जैसा)

घन वाद्यों में – आघाटी (झांझ जैसा) का उल्लेख मिलता है।

इससे ये अनुमान लगाया जा सकता है कि तत, अवनध आदि वाद्यों में उपयोगी चर्म तथा तन्त्रियाँ बनाने की कला भी उस समय प्रचलित थी। नृत्यकला का भी प्रचुर उल्लेख पाया जाता है। खुले प्रांगण में विवाह आदि अवसरों पर नर और नारी जनता के सम्मुख नृत्य में भाग लेते थे।[8]

सामवेद कालीन संगीत –

सामवेद को संगीत का मूल कहा जाता है। साम का गान ऋग्वेद की ऋचाओं के आश्रय से किया जाता रहा है। सामसंहिता में ऋक, के सभी मंत्र न होकर कुछ चुने हुए गान योग्य मन्त्र सम्मिलित है। साम का प्रधान अंग स्वर है। सामवेद में कुछ ऐसे गान भी उपलब्ध होते हैं, जो ऋग्वेद की ऋचाओं पर आश्रित नहीं है किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। सामवेद के दो प्रधान भाग है– ''आर्चिक तथा गान''।[9]

आर्चिक – सामसंहिता में जो ऋग्वेदिक ऋचाएं हैं, उन्हें आर्चिक कहते हैं। आर्चिक का अर्थ है ऋक समूह, इनके दो भाग हैं–

1. पूर्वार्चिक, 2. उत्तरार्चिक

1. **पूर्वार्चिक** – इस विभाग में 6 अध्याय हैं–

   प्रथम अध्याय – आग्नेय पर्व से सम्बन्धित, इसमें अग्नि विषयक ऋक मन्त्रों का समन्वय है।

   द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ अध्याय – ऐन्द्र पर्व शीर्षक से हैं इनमें इंद्र की स्तुति सम्बन्धी मन्त्र है।

पंचम अध्याय – सोम विषयक ऋचायें हैं।

षष्ठ अध्याय – आरण्य पर्व में विभिन्न देवताओं से सम्बन्धित छन्दों की स्तुतियों का समावेश है।[10]

प्रत्येक अध्याय में अनेक खण्ड हैं जिन्हें दशति कहा गया है। इन अध्यायों में ऋचाओं की संख्या लगभग दस पाई गई है। पहले अध्याय से लेकर पांचवे अध्याय तक की ऋचाओं को ग्राम गान या ग्राम गेय गान कहा गया है तथा छठे अध्याय की ऋचायें आरण्यगान कहलाती है। अन्त में परिशिष्ट रूप में 'महानाम्नी' नामक ऋचायें दी गई हैं। इस प्रकार पूर्वार्चिक मन्त्रों की संख्या 650 है।

उत्तरार्चिक – इसमें 9 अध्याय हैं। उत्तरार्चिक की ऋचाएं गान की योनि का आधार है। ये गान चतुर्विध बतलाए गए हैं।

1. ग्राम गेय गान
2. अरण्यगेय गान
3. ऊह गान
4. उह्यगान

ऐसा जान पड़ता है कि सामगान का स्वरूप द्विविध था। प्रारम्भ में ये ऋचाएं एक रूपरेखा मात्र थी। जिनमें परिवर्तन की स्वीकृति नहीं थी। परवर्ती काल में कुशल उद्गाता अपनी कल्पनाशक्ति से परिवर्तन करके उसे अत्यन्त विकसित, रहस्यात्मक रूप देकर परिवर्तन लाये यही बाद में सामवेद के गीतों का आधार बनी।

सामगान की अनेक शाखाएं थी केवल तीन नाम अधुना उपलब्ध है। कौथुमीय, शणायणीय व जैमिनी सूत्र शाखाएँ थी।

वैदिक स्वर – आर्चिक – एक स्वर का गान था। यज्ञ की ऋचायें गायन के लिए।

गाथिक – गाथाएं दो स्वरों का गायन था।

सामिक – तीन स्वरों का गायन था। यह गान साम से सम्बन्धित था। प्रारम्भ में सामगान तीन स्वरों में होता था। बाद में विकास होते होते 5 या 6 स्वरों में साम गान होने लगा फिर सात स्वरों में केवल दो साम सप्तस्वरीय उल्लेखित हैं। परन्तु यह निश्चित है कि वैदिक युग में सात स्वरों का विकास हो चुका था। सामवेद का सप्तक अवरोही क्रम में था जिसके स्वर थे म ग रे स